इकाई–3 : पाठ्यचर्या में कार्य का स्थान

संरचना

3.1 परिचय
3.2 उद्देश्य
3.3 पाठ्यचर्या में कार्य का स्थान
3.4 विकासात्मक कार्य
3.5 पाठ्यचर्या का निहितार्थ
3.5.1 पाठ्यचर्या का कार्यान्वयन
3.6 पाठ्यचर्या में मूल्यों का स्थान
3.6.1 मूल्य सम्बन्धी भारतीय अवधारणा
3.6.2 मूल्य सम्बन्धी पाश्चात्य अवधारणा
3.6.3 भारतीय एवं पाश्चात्य दृष्टिकोणों में समन्वय
3.6.4 भारतीय संविधान में निहित मूलभूत मूल्य
3.7 पाठ्यचर्या के निर्धारक
3.8 पाठ्यचर्या मूल्यांकन
3.8.1 मूल्यांकन की विशेषताएं
3.8.2 पाठ्यचर्या मूल्यांकन के लाभ
3.8.3 पाठ्यचर्या मूल्यांकन की प्रकिया
3.8.4 पाठ्यचर्या मूल्यांकन प्रतिमान
3.9 सारांश
3.10 अभ्यास कार्य
3.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें

3.1 परिचय

पाठ्यक्रम का मुख्य उद्देश्य शिक्षा के उद्देश्यों को प्राप्त करना है। शिक्षा के उद्देश्य जीवन और समाज के उद्देश्यों के अनुकूल होते हैं तथा इनका निर्धारण व्यक्ति और समाज की आवश्यकताओं एवं आकाक्षाओं की पूर्ति हेतु किया जाता है। चूकि विभिन्न समाजों की आवश्यकताएं एवं आकांक्षाऍं अलग–अलग होती है। अतः शिक्षा के उद्देश्य भी देश काल एवं परिस्थिति के अनुसार बदलते रहते हैं। इन उद्देश्यों के निर्धारण में व्यक्ति एवं समाज के मूल्यों, आदर्शों, विश्वासों, मान्यताओं एवं परम्पराओं की बहुत महत्वपूर्ण भूमिका होती है। विभिन्न शिक्षाविदों ने अपने जीवन के मूल्यों एवं आदर्शों के अनुसार शिक्षा के भिन्न–भिन्न उद्देश्य बतलाये हैं। इसके अतिरिक्त जिस देश या समाज में जैसा बातावरण रहता है, उसी के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य बन जाता है। इस प्रकार पाठ्यचर्या निर्माण में व्यक्ति और समाज के विश्वासों, परम्पराओं, जीवन मूल्यों एवं आदर्शों का महत्वपूर्ण स्थान होता है। प्रस्तुत इकाई के अन्तर्गत पाठ्यचर्या में कार्य का स्थान, वास्तविक जीवन में मूल्यों, पाठ्यचर्या में इनके निहितार्थ व क्रियान्वयन तथा पाठ्यचर्या मूल्यांकन के सम्बन्ध में प्रकाश डाला गया है।

3.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप–

- पाठ्यचर्या में कार्य के स्थान के बारे में समझ सकेंगे।
- पाठ्यचर्या में जीवन के वास्तविक मूल्यों को समझ सकेंगे।

- पाठ्यचर्या के निहितार्थ एवं क्रियान्वयन के बारे में समझ सकेंगे।
- पाठ्यचर्या के मनोवैज्ञानिक निर्धारकों को समझ सकेंगे।
- पाठ्यचर्या के मूल्यांकन के संबंध में समझ सकेंगे।
- पाठ्यचर्या का विभिन्न परिस्थितियों में मूल्यांकन कर सकेंगे।

3.3 पाठ्यचर्या में कार्य का स्थान

कार्य आधारित पाठ्यक्रम में विभिन्न विषयों क्रियाओं तथा कार्य को इस प्रकार व्यवास्थित तथा संगठित किया जाता है कि छात्र निर्धारित शैक्षिक उद्देश्यों को प्राप्त कर सकें। कोठारी आयोग (1966) ने अपने द्वारा प्रस्तुत पाठ्यक्रम में कार्यानुभव को महत्वपूर्ण स्थान दिया था। कार्य–आधारित पाठ्यक्रम में केन्द्रित कार्य को शिक्षा का केन्द्रबिन्दु मानकर सभी विषयों तथा क्रियाओं की शिक्षा उसी केन्द्रित कार्य का आधार बनाकर दी जाती है। कार्य–आधारित पाठ्यक्रम छात्र को सैद्धान्तिक ज्ञान देनें के साथ ही व्यावहारिक तथा जीवनोपयोगी ज्ञान भी प्रदान करता है। समाज के साथ स्वस्थ समन्वय स्थापित करता है।

महात्मा गांधी बुनियादी शिक्षा की वकालत करते हैं जिसमें प्रत्येक बुनियादी विद्यालय में एक केन्द्रीय क्रिया की व्यवस्था करनी पड़ती थी तथा बालक उस क्रिया को करते हुए अपनी सम्पूर्ण शिक्षा प्राप्त करता था। वर्तमान समय में विद्यालय का कार्यक्षेत्र समयबद्ध अध्ययन–अध्यापन के सीमित घेरे से निकलकर व्यापक रूप धारण कर चुका हैं तथा इसमें निरन्तर बृद्धि होती जा रही है। विद्यालयों में आयोजित की जाने वाली सभी प्रवृत्तियॉ पाठ्यक्रम को उसके अन्तर्गत सम्पादित किये जाने वाले कार्यों के आधार पर सीमांकित करने का प्रयास किया है। माइकल पेलार्डी के अनुसार– ''सामान्यतया पाठ्यक्रम को विद्यार्थियों के उन समस्त अनुभवों के रूप में परिभाषित किया जाता है जिनका दायित्व विद्यालय अपने ऊपर लेता है। इस रूप में पाठ्यक्रम का तात्पर्य प्रायः उन क्रमिक कार्यों से हैं जो इन अनुभव से पूर्व , इनके होने के साथ–साथ तथा इन अनुभवों के बाद आयोजित किये जाते है।

इन कार्यों का निम्नांकित आठ वर्गों में समाहित किया जा सकता है–

1) लक्ष्यों एवं उद्देश्यों का निर्धारण
2) बालकों के संज्ञानात्मक विकास का पोषण
3) बालकों के मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक स्वास्थ्य का संवर्धन
4) अधिगम हेतु व्यवस्था
5) शैक्षणिक स्रोतों का उपयोग
6) छात्रों का व्यक्तिगत बोध तथा उसके अनुरूप शिक्षण व्यवस्था
7) समस्त कार्यक्रमों एवं बालकों के कार्यों का मूल्यांकन
8) नवीन प्रवृत्तियों का साहचर्य

इन उपर्युक्त कार्यों को सम्पादित करने के लिए विद्यालयों में जिन प्रवृत्तियों का आयोजन किया जाता है उनके प्रकार एवं संख्या में बहुत विविधता पाई जाती हैं, किन्तु व्यापक दृष्टि कोण के आधार पर उन्हें तीन प्रमुख वर्गों में वर्गीकृत किया जाता है –

(अ) शैक्षिक क्रियाएँ

(ब) पाठ्य सहगामी क्रियाएँ

(स) रूचि कार्य

(अ) **शैक्षिक क्रियाएँ** (Educational Activities or Curricular Activities)

विद्यालयों के समस्त क्रियाकलापो के साथ–साथ शिक्षा के क्षेत्र की सभी क्रियाएँ जहॉ भी जिस रूप में, जब भी आयोजित की जाती है शैक्षिक ही होती हैं, किन्तु सामान्य रूप है, जिनका नियोजन कुछ निश्चित लक्ष्यों की पूर्ति हेतु निर्धारित पाठ्य–विषयों के अध्ययन–अध्यापन की दृष्टि से किया जाता है। वर्तमान में ब्यावहारिक ज्ञान अर्थात प्रायोगिक कार्यों का पाठ्यक्रम में समावेश होने तथा नवीन शिक्षण विधियों द्वारा बालकों की सक्रियता पर अधिक बल देने के फलस्वरूप प्रयोग शालाएँ , कार्य शालाएँ तथा पुस्तकालय आदि भी शैक्षिक क्रियाओं के कार्य–स्थल बन गए हैं। इसके साथ ही अब अधिगम–अनुभवों अर्थात विद्यार्थियों द्वारा वास्तविक परिस्थितियों में प्रत्यक्ष रूप से ज्ञान प्राप्त करने पर भी अधिक बल दिया जाने लगा है।

(ब) **पाठ्यसहगामी क्रियाएं** (Co-Curricular Activities)

प्रारंभ में पाठ्यचर्या का क्षेत्र विभिन्न विषयों की पाठ्य–वस्तुओं के अध्ययन–अध्यापन तक ही सीमित माना जाता था। विद्यालयों में आयोजित होने वाली अन्य गतिविधियों जैसे–खेलकूद, व्यायाम, सहित्यिक एवं सांस्कृतिक क्रिया कलाप आदि को पाठ्येत्तर क्रियाएँ (Extra Curricular Activities) माना जाता था, किन्तु पाठ्यक्रम के व्यापक दृष्टिकोंण के आधार पर अब इन गतिविधियों को पाठ्यसहगामी क्रियाओं के नाम से जाना जाता है। वर्तमान समय में विद्यालयों में शिक्षकों के मार्गदर्शन एवं निर्देशन में विभिन्न प्रकार की पाठ्य–सहगामी क्रियाएँ आयोजित की जाती हैं जिन्हें कुछ प्रमुख वर्गों में निम्नांकित रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है–

I) शारीरिक विकास संबंधी क्रियाएं – पी.टी0, व्यायाम, खेलकूद, पर्वतारोहण, तैराकी, नौकायन, स्वास्थ्य परीक्षण, पौष्टिक आहार (मध्यान्ह भोजन) आदि।

II) साहित्यिक क्रियाएँ– भाषण कला, वाद–विवाद, विचार गोष्ठी, कार्य–गोष्ठी, कविता पाठ, अन्त्याक्षरी, परिचर्चा, आशुभाषण, पत्रिका प्रकाशन, लेखन, समाचार एवं पत्रबाचन आदि।

III) सांस्कृतिक–क्रियाएँ– एकल अभिनय, मूलअभिनय, नाटक, प्रहसन, नृत्य एवं अन्य मनोरंजनात्मक क्रियाएं।

IV) सृजनात्मक क्रियाएँ – चित्रकारी, पच्चीकारी, दस्तकारी, बागवानी, उपयोगी वस्तुओं का निर्माण एवं नवीनता की खोज आदि।

V) सामाजिक क्रियाएँ – सफाई अभियान, साक्षरता का प्रसार, स्वास्थ्य सम्बन्धी जानकारियों का प्रचार, सामाजिक कुरीतियों एवं अन्धविश्वासों को दूर करने के लिये प्रचार अभियान आदि।

VI) राष्ट्रीय क्रियाकलाप– राष्ट्रीय दिवसों एवं जयन्तियों को मनाना एन.सी.सी.एन.एस.एस. स्काउटिंग, रेडक्रास आदि।

(स) **रूचिकार्य** (Hobbies)

इसके अन्तर्गत वे गतिविधियॉ आती हैं जिनका आयोजन विद्यालयों द्वारा बच्चों की रूचियों का समुचित विकास करने के उद्‌देश्य से किया जाता है। इस प्रकार की गतिविधियों में विभिन्न वस्तुओं जैसे– टिकट, सिक्के, पत्थर आदि का सग्रह करना, चित्र एवं कार्टून बनाना, फोटोग्राफी करना, बेकार पड़ी चीजों से उपयोगी वस्तुएं बनाना, विभिन्न प्रकार के चित्रों के एलबम तैयार करना आदि।

यद्यपि विद्यालयों में आयोजित की जाने वाली गतिविधियों को उपर्युक्त तीन वर्गों में विभाजित करने का प्रयास किया गया है किन्तु सही मायने में न तो इन गतिविधियों की पूर्ण सूची तैयार की जा सकती है और न ही उन्हें निश्चित रूप से किसी एक वर्ग में रखा ही जा सकता है। जैसे–वाद–विवाद, परिचर्चा, पैनल चर्चा आदि गतिविधियों को पाठ्य–सहगामी गतिविधियों के अंतर्गत साहित्यिक गतिविधियों में सम्मिलित किया जाता है किन्तु यदि इन्ही गतिविधियों को निर्धारित पाठ्यक्रम के किसी प्रकरण के अध्ययन–अध्यापन की विधि के रूप में प्रयोग किया जाता है तब यही शैक्षिक गतिविधियॉ हो जाती हैं। इसी प्रकार व्यवस्था–परिवर्तन के फलस्वरूप भी इनमें परिवर्तन होता रहता है। जैसे–खेल, पाठ्य–सहगामी गतिविधियों के अंतर्गत आता हे, किन्तु कुछ राज्यों ने इसे अब एक अनिवार्य विषय के

रूप में पाठ्यक्रम में एक निश्चित स्थान प्रदान किया है, अतः अब यह शैक्षिक गतिविधियों में सम्मिलित हो गया है।

3.3.1 विकासात्मक कार्य

विकासात्मक कार्यों से तात्पर्य है मनुष्य को ऐसे कार्य समाज में स्वस्थ एवं सन्तोषजनक अभिवृद्धि के लिए सीखना ही चाहिए। यदि व्यक्ति सफलतापूर्वक उलपब्धि प्राप्त करता है तब उसे प्रसन्नता होती है और यह प्रसन्नता आगे के कार्यों में सफलता के लिये सहायक होती है। बालक के विद्यालयीन जीवन के विकासात्मक कार्यों का वर्णन हेविग हर्स्ट(1956)ने निम्नानुसार किया है।

- **प्रारम्भिक बाल्यावस्था (Early Childhood)**

  (अ) सामाजिक एवं भौतिक वास्तविकता के वर्णन के लिए भाषा सीखना एवं संकल्पनाओं का निर्माण करना।
  (ब)पढ़ने के लिए तैयार होना।
  (स)सही एवं गलत में अन्तर करना सीखना।

- **मध्य बाल्यावस्था (Middle Childhood)**

  (अ)शारीरिक कौशलों को सीखना।
  (ब)अपने आपके बारे में पूर्ण अभिवृत्ति का निर्माण करना।
  (स)हमउम्रों के साथ रहना।
  (द)स्त्री–पुरूष की उचित भूमिका सीखना।
  (ई)दैनिक जीवन की संकल्पनाएुँ विकसित करना।
  (क)नैतिकता एवं मूल्यों का विकास करना।
  (ख)व्यक्तिगत स्वतन्त्रता अर्जित करना।
  (ग)सामाजिक समूहों एवं संस्थाओं के प्रति प्रजातान्त्रिक अभिवृत्ति विकसित करना।

- **किशोरावस्था (Adolescence)**

  (अ)हम उम्र साथियों से नये एवं अधिक परिपक्व सम्बन्ध स्थापित करना।
  (ब)पुरूष एवं महिला की सामाजिक भूमिका अर्जित करना।
  (स)अपने शरीर संगठन को स्वीकार करना एवं शरीर का प्रभावी रूप से उपयोग करना।
  (द)पालकों एवं अन्य वयस्कों की संवेगात्मक स्वतन्त्रता प्राप्त करना।
  (क)विवाह एवं पारिवारिक जीवन के लिए तैयार करना।
  (ख)आर्थिक वृत्ति के लिए तैयार करना।
  (ग)व्यवहारों के मार्गदर्शन के लिए मूल्यों एवं नैतिक पध्दति अर्जित करना।
  (घ)सामाजिक रूप से उत्तरदायित्वपूर्ण व्यवहार करना।

3.4 ज्ञान का एकीकरण (Integrating Knowledge)

गेस्टाल्टवाद अर्थात पूर्णाकारवाद सिध्दान्त के अनुसार मस्तिष्क एक इकाई है। मस्तिष्क ज्ञान को छोटे–छोटे टुकड़ो में प्राप्त नहीं करता, बल्कि उसे पूर्णरूप में ग्रहण करता है। वहीं वस्तु या विचार मस्तिष्क में स्थिर होता है जो पूर्ण अर्थ देता है।

चूंकि ज्ञान एक इकाई है तथा शिक्षा का उद्देश्य बच्चों को ज्ञान की एकता से परिचित कराना है। शिक्षा का यह उद्देश्य पाठ्य–विषयों को अलग–अलग रूप में पढ़ाने से पूरा नहीं हो सकता अर्थात यह कार्य तभी पूर्ण हो सकता है जब विषयों को एक–दूसरे से सम्बन्धित करके पढ़ाया जाये। इसके लिए विषयों का एकीकरण आवश्यक है। एकीकरण की अवधारणा के अन्तर्गत विभिन्न पाठ्य–विषयों को इस प्रकार परस्पर,सम्बन्धित किया जाता है कि उनके बीच किसी प्रकार का भेद न रहे। इस प्रकार ज्ञान को समग्र रूप में प्रस्तुत करना ही ज्ञान का एकीकरण है।

एकीकरण की अवधारणा से एकीकृत पाठ्यक्रम का उदय हुआ है। अमेरिकी विद्यालयों में एकीकृत पाठ्यक्रम का विकास हुआ है। एकीकरण के सिध्दान्त के अनुसार कोई विचार अथवा किया तभी

प्रभावशाली एवं उपयोगी होती है जब उसके विभिन्न भागों एवं पक्षों में एकता होती है। इसीलिए एकीकृत पाठ्यक्रम के अन्तर्गत विभिन्न विषयों के ज्ञान को अलग–अलग खण्डो में प्रस्तुत करके सब विषयों को मिलाकर ज्ञान की एक इकाई के रूप में प्रस्तुत किया जाता है।

हेन्डरसन के अनुसार,"एकीकृत पाठ्यक्रम वह पाठ्यक्रम है जिसमें विषयों के बीच कोई अवरोध,रूकावट अथवा दीवार नहीं होती है।

हेन्डासन के अनुसार, इस प्रकार का पाठ्यक्रम उन अनुभवों को देता है जिन्हें एकीकरण की प्रकिया के लिए सुविधाजनक समझा जाता है तथा जिससे बालक उस पाठ्य–वस्तु को सीखते है जो अनुभवों को समझने में एवं उनके पुनर्निर्माण में सहायक होती है। इस प्रकार का अनुभव–प्रधान पाठ्यक्रम विषय को अलग–अलग रखने तथा उनको शीर्षकों में बॉटने का अन्त करता है एवं ऐसे विषयों को स्थान देता है जो बालक की रूचि के केन्द्र होते हैं।

कौशल (Skill)–प्रसिध्द दार्शनिक ब्राउडी के अनुसार पाठ्यक्रम ऐसा होना चाहिए जिससे अपेक्षित आदतों का समुचित विकास हो सके। इसके लिए उसने चार प्रकार के कौशलों के विकास को आवश्यक माना है–

- व्यवसायिक कौशल(Vocational skill)
- प्रतिकात्मक कौशल(Symbolic skill)
- अध्ययन की आदतें(Study habits)
- तर्क कौशल(Reazoning skill)

इन कौशलों के विकास हेतु माध्यमिक स्तर पर पाठ्यक्रम में प्राकृतिक अध्ययन,सामाजिक अध्ययन तथा व्यावसायिक निर्देशन की व्यवस्था होनी चाहिए।

यथार्थवादी प्राकृतिक नियमों में विश्वास करते हैं। इनका मानना है कि समाज तथा सामाजिक संस्थाओं को एक समान क्रिया तथा व्यवहार करना चाहिए। अतः विद्यालय के छात्रों को यथार्थ जगत से परिचित कराने में अहम भूमिका है। इस भूमिका को मिलाने के लिए पाठ्यक्रम में मुख्य रूप से भौतिक तथा सामाजिक विज्ञानों का समावेश हो जो प्राकृतिक प्रकटनों की व्याख्या कर सकें। इसके साथ ही पाठ्यक्रम में बालक के वास्तविक जीवन की तैयारी हेतु उपयोगी विषयों का भी समावेश किया जाना चाहिए उस दृष्टि से यथार्थवादियों ने प्रकृति विज्ञान तथा उद्योग या व्यवसाय को पाठ्यक्रम में प्रमुखता प्रदान की है तथा भाषा,साहित्य कला, संगीत,इतिहास,भूगोल आदि विषयों को गौण स्थान प्रदान किया है। उन्होंने विस्तृत पाठ्यक्रम में लगभग तीस विषयों को सम्मिलित किया है तथा उसमें से अपनी रूचि के अनुसार विषयों का चयन करने की बच्चों को स्वातंत्रता प्रदान की है। मातृभाषा तथा उद्योग को अनिवार्य विषय घोषित किया है। कमेनियस ने इन दो विषयों की अनिवार्यता को स्पष्ट करते हुए कहा है कि व्यवसाय जीविकोपार्जन के लिए आवश्यक है तथा मातृभाषा समस्त विकास की आधारशिला है।

3.5 पाठ्यचर्या का निहितार्थ (तात्पर्य) (Implication of Curriculum)

पाठ्यचर्या शब्द अंग्रेजी भाषा के 'करीक्यूलम'(Curriculum)शब्द का हिन्दी रूपान्तर है। 'करीक्यूलम' शब्द लैटिन भाषा से अंग्रेजी में लिया गया है तथा यह लैटिन शब्द 'कुर्रेर' से बना है। 'कुर्रेर' का अर्थ है 'दौड़ का मैदान', दूसरे शब्दों में 'करीक्यूलम' वह क्रम है जिसे व्यक्ति को अपने गन्तव्य स्थान पर पहुॅचने के लिए पार करना होता है। अतः पाठ्यचर्या वह साधन है, जिसके द्वारा शिक्षा व जीवन के लक्ष्यों की प्राप्ति होती है। यह अध्ययन का निश्चित एवं तर्कपूर्ण क्रम है, जिसके माध्यम से शिक्षार्थी के व्यक्तित्व का विकास होता है तथा वह नवीन ज्ञान एवं अनुभव को ग्रहण करता है। शिक्षा के अर्थ के बारे में दो धारणाऍ हैं– पहला प्रचलित अथवा संकुचित अर्थ और दूसरा वास्तविक या व्यापक अर्थ। संकुचित अर्थ में शिक्षा केवल स्कूली शिक्षा या पुस्तकीय ज्ञान तक ही सीमित होती है, तदनुसार संकुचित अर्थ में पाठ्यचर्या भी केवल विभिन्न विषयों के पुस्तकीय ज्ञान तक सीमित है, परन्तु विस्तृत अर्थ में पाठ्यचर्या के अन्तर्गत वह सभी अनुभव आ जाते हैं जिसे एक नई पीढ़ी अपनी पुरानी पीढ़ियों से प्राप्त करती है। साथ ही विद्यालय में रहते हुए शिक्षक के संरक्षण में विद्यार्थी जो भी संक्रियाऍ करता है, वह सभी पाठ्यचर्या के अन्तर्गत आती हैं तथा इसके अतिरिक्त विभिन्न पाठ्यचर्या सहगामी क्रियाऍ भी पाठ्यचर्या का अंग होती है। अतः वर्तमान समय में 'पाठ्यचर्या' से तात्पर्य उसके विस्तृत स्वरूप से ही है।

पाठ्यचर्या के अर्थ को और अच्छी तरह समझने के लिए हमें शिक्षा के विकास पर भी एक दृष्टि डालनी आवश्यक है। आदिकाल में शिक्षा का स्वरूप पूर्णतया अनौपचारिक होता था अर्थात् शिक्षा किसी विधि एवं क्रम में बंधी हुई नहीं थी। उस समय बालकों की शिक्षा उनके परिवार एवं समाज की जीवनचर्या के मध्य चलती रहती थी तथा बालक उसमें भागीदार बनकर प्रत्यक्ष अनुभव एवं निरीक्षण के माध्यम से तथा अपने बड़ो एवं पूर्वजों के अनुभव सुनकर शिक्षा प्राप्त करता था, किन्तु सभ्यता के विकास के साथ–साथ मानव के ज्ञानराशि के संचित कोष में निरन्तर वृध्दि होती गई तथा मनुष्य के जीवन में जटिलताएँ एवं विविधताएँ आती गई। परिणामस्वरूप व्यक्ति के पास समय और साधन का अभाव होने लगा तथा उसकी शिक्षा अपूर्ण रहने लगी। अतः प्रत्येक विकासशील समाज ने अपने बालकों को समुचित शिक्षा प्रदान करने के उद्देश्य से इसे विधिवत् एवं क्रमबध्द बनाने के प्रयास प्रारम्भ किये। विद्यालयों का उद्भव तथा उनकी स्थापना इन्हीं प्रयासों का परिणाम है। इस प्रकार समाज जो उपयोगी महत्वपूर्ण ज्ञान अपने बालकों को समुचित ढ़ंग से नहीं दे पा रहा था उसने उसकी जिम्मेदारी अनुभवी विद्वानों को सौंप दी। इन विद्यालयों द्वारा बालकों को जीवन के उद्देश्यों को प्राप्त करने तथा समुचित ढ़ंग से शिक्षा प्रदान करने हेतु जो ज्ञानराशि निश्चित एवं निर्धारित की गई तथा की जाती है उसे ही 'पाठ्यचर्या' का नाम दिया गया है। इस प्रकार हम यह कह सकते हैं कि पाठ्यचर्या अध्ययन का ही एक क्रम है, जिसके अनुसार चलकर विद्यार्थी अपना विकास करता है। अतः यदि शिक्षा की तुलना दौड़ से की जाए तो पाठ्यचर्या उस दौड़ के मैदान के समान है, जिसे पार करके दौड़ने वाले अपने निश्चित लक्ष्य तक पहुॅच जाते हैं।

3.5.1 पाठ्यचर्या का कार्यान्वयन (Implimentation of Curriculum)

किसी भी पाठ्यक्रम का महत्व उसके कार्यन्वयन से होता है। कार्यन्वयन के द्वारा ही लक्ष्यों व उद्देश्यों की प्राप्ति होती है। विशय (1976) ने बताया कि कार्यान्वयन के लिये पुनर्रचना एवं प्रतिस्थापन की आवश्यकता होती है। इसके लिये व्यक्तिगत आदतों, व्यवहार के तरीकों, कार्यक्रम के महत्व सीखने के स्थान एवं वर्तमान पाठ्यक्रम के पुनगठन एवं समायोजन की आवश्यकता होती है। सामाजिक वैज्ञानिकों ने वर्षों पूर्व पूर्ण कार्यान्वयन की जो परिभाषा दी थी, वह आज भी उपयोगी है जो निम्नवत हैं–

– स्वीकृति

– अधिक समय कार्य करना

– किसी विशिष्ट पद का एक विचार अथवा चलन

– व्याक्तियों, समूहों अथवा अन्य अनुकूलित इकाइयों से संबंधित

– सम्प्रेषण

– समाजिक संरचना का और

– मूल्यों अथवा संस्कृति की दी गई पद्धति लेथबुड (1982) ने कार्यान्वयन को एक प्रक्रिया माना हैं, जिसमें वर्तमान पद्धति एवं नवाचारों अथवा परिवर्तन अभिकर्ताओं द्वारा सुझायी गई पद्धति में अंतरों को कम किया जाता है। कार्यान्वयन व्यवहारात्मक परिवर्तन को प्रभावित करने का प्रयास करता है। यह सोपानों (Steps) में होता है तथा शक्तियों को किसी नवाचर के प्रति तैयार करने में समय लगता है।

आर्न्सिटन एवं हान्किन्स (1988) ने कार्यान्वयन को पाठ्यक्रम चक्र का एक अलग घटक माना है। इसमें कई व्यक्तियों के व्यापक कार्य शामिल हैं। यह एक अन्तक्रियात्मक प्रक्रिया है जिसमें पाठ्यक्रम निर्माता एवं उपयोग कर्त्ता के मध्य अन्तक्रिया होती है। कार्यान्वयन के द्वारा व्यक्तियों के ज्ञान,कार्य एवं अभिव्यक्तियों में परिवर्तन का प्रयास किया जाता है।

व्यवहारिक परिस्थितियों में पाठ्यक्रम के लागू होने की सीमा का पता क्रियान्वयन की अवस्था में लगाया जाता है कि व्यवहारिक रूप से क्रियान्वयन के समय क्या–क्या समस्याएं आयेगी जैसे–

–समय,अंक व क्रिया की दृष्टि से जो सापेक्षित भार प्रदान किया गया है वह उपयुक्त है या नहीं।

–शिक्षक की दक्षता–शिक्षण,शिक्षण विधियों के अनुसार पाठ्यक्रम को क्रियान्वित कर रहा है या नहीं।

–विषय वस्तु को व्यवस्थित,अनुक्रमित व रूचि कर बनाना भी शिक्षक पर निर्भर है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि पाठ्यचर्या क्रियान्वयन शिक्षण व्यवस्था का सबसे महत्वपूर्ण घटक है।

3.6 पाठ्यचर्या में मूल्यों का स्थान

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। सामाजिक प्राणी के रूप में मनुष्य को अपने समाज से जो कुछ भी प्राप्त होता है, वह उसकी सामाजिक विरासत है तथा इसे ही विद्वानों ने संस्कृति की संज्ञा प्रदान की है। संस्कृति को प्रमुख रूप से दो भागों में विभाजित किया जा सकता है– भौतिक एवं अभौतिक।

- भौतिक संस्कृति का सम्बन्ध मूर्त वस्तुओं जैसे– मकान,कपड़ा,फर्नीचर,रेडियो,साइकिल,बर्तन,मूर्तियॉ,पुस्तके,मशीन एवं अन्य उपकरण आदि से है।
- अभौतिक संस्कृति के अन्तर्गत वे समस्त चीजें सम्मिलित की जाती हैं जिन्हें देखा या छुआ नहीं जा सकता है। धर्म,प्रथा,परम्परा,आदर्श,मूल्य,विश्वास,भाषा,जनरीतियॉ,साहित्य,विज्ञान,दर्शन आदि अभौतिक संस्कृति के अंग हैं।

  मूल्य, मानव अस्तित्व में किसी महत्वपूर्ण चीज का प्रतिनिधित्व करते हैं। मनुष्य जीवन–पर्यन्त सीखता रहता हैं,जिससे उसके अनुभवों मे निरन्तर वृध्दि होती रहती है।मनुष्य में सीखने के साथ–साथ जैसे–जैसे परिपक्वता आती हे वह ऐसे अनुभव भी प्राप्त करता है जो उसके व्यवहार को निर्देशित करते हैं। ये निर्देशक जीवन को दिशा प्रदान करते हैं तथा इन्हें मूल्य कहा जा सकता है। ये अनुभवों के विकसित तथा परिपक्व होने के साथ– साथ विकसित तथा परिपक्व होते हैं।

3.6.1–मूल्य सबंधी भारतीय अवधारणा (Indian Conception of Values)

भारतीय मनीषियों ने मानव–मूल्यों की विवेचना मानव को ज्ञान एवं विवेक युक्त प्राणी मानते हुए की है। ज्ञानहीन मनुष्य पशु के सामान होता है। ज्ञान के प्रकाश में की गई क्रियाएँ ही वास्तव में मानव क्रियाएँ होती हैं तथा ज्ञान के प्रकाश में की गई इच्छा–तुष्टि या लक्ष्य–प्राप्ति को 'मूल्य' की संज्ञा प्रदान की गई है। पशु अपनी इच्छाओं की तृप्ति केवल मूल–प्रवृत्तियों(Instinets)से परिचालित होकर करते हैं तथा उनमें ज्ञान शून्यता होती है। अतः इन निम्न प्राणियों का लक्ष्य आत्म रक्षा एवं प्रजाति रक्षा तक ही सीमित होता है। मानवोचित लक्ष्य इससे भिन्न हैं। अतः मानवोचित जीवन लक्ष्यों को ही भारतीय मनीषियों ने 'मूल्य' की संज्ञा दी है तथा भारतीय जीवन मूल्यों के लिए 'पुरूषार्थ'(*What are desired by man*) शब्द का प्रयोग किया है। इनके द्वारा प्रतिपादित चार पुरूषार्थों के रूप में चार भारतीय मूल्य हैं– अर्थ,काम,धर्म और मोक्ष। इनमें से पहले दो मूल्यों को लौकिक(निम्नस्तर) तथा अन्तिम दो मूल्यों को आध्यात्मिक(उच्चतर) कहा जा सकता है। अर्थ और काम,जैविक या साधन मूल्य भी कहे जा सकते हैं जो सामान्य जीवन,आत्म रक्षा एवं प्रजाति रक्षा के लिए उपयुक्त हैं। भारतीय अवधारणा के अनुसार धर्म कुछ सनातन एवं शाश्वत नियमों का नाम है जो कि निरपेक्ष है तथा वैयक्तिकता से ऊपर है। धर्म सभी सामाजिक एवं नैतिक व्यवस्थाओं का आधार है। इसके दो पक्ष बतलाये गये हैं– एक वर्तमान भौतिक या सांसारिक जीवन तथा दूसरा इसके बाद का जीवन। प्रथम को 'अभ्युदय' तथा दूसरे को 'निःश्रेयस' कहा गया है। **''यतो अभ्यूदय निःश्रेयस सिद्धिः सः धर्मः। '' (वैशेषिक सूत्र 1–1–2)** जीवन के विभिन्न पक्षों की जड़ धर्म ही है। अतः जो धर्म का लक्ष्य है, वही शिक्षा,समाजशास्त्र, राजनीति एवं अर्थनीति का भी लक्ष्य है।

मोक्ष मानव जीवन का अन्तिम लक्ष्य है तथा अन्य तीनों पुरूषार्थों(अर्थ,काम,धर्म) की पराकष्ठा है। यह परिपूर्णता(*Self-perfection*) की स्थिति है। यह वह अवस्था है जब सभी इच्छाएँ लुप्त हो जाती हैं, मनुष्य राग–द्वेष से मुक्त हो जाता है। यह जीव–मुक्ति की अवस्था ही मोक्ष है। उपनिषदों में इसे इसी संसार में सशरीर प्राप्य बतलाया गया है। अतः पाठ्यचर्या में इनका समावेश बालक के सर्वागीण विकास के लिए आवश्यक है।

3.6.2–मूल्य संबंधी पाश्चात्य अवधारणा(*Western Conception of Values)*

पाश्चात्य विद्वानों ने विभिन्न दृष्टिकोणों से 'मूल्य' को परिभाषित किया है, किन्तु इसकी सामान्य परिभाषा इस प्रकार की गई है–

"मल्य वह है, जिसका महत्व है, जिसके पाने के लिए व्यक्ति और समाज चेष्टा करते है, जिसके लिए वे जीवित रहते हैं तथा जिसके लिए वे बड़े से बड़ा त्याग कर सकते हैं।"

अर्बन के अनुसार,"मूल्य वह है जो मानव इच्छाओं की तुष्टि करे।" इन्होंने मूल्यों का वर्गीकरण इस प्रकार किया है–

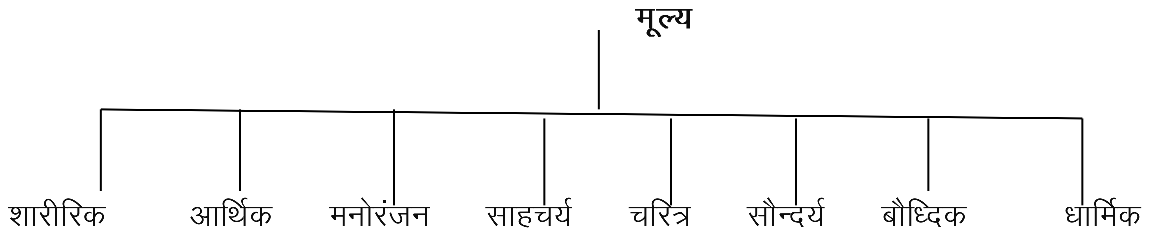

इनमें शारीरिक, आर्थिक एवं मनोरंजन मूल्यों को साधन(Instrumental Value),सौन्दर्य,बौध्दिक एवं धार्मिक मूल्यों को साध्य(Intrinsic value) तथा साहचर्य एवं चरित्र मूल्यों को साधन एवं साध्य दोनों प्रकार के मूल्यों के अन्तर्गत रखा गया है। साधन एवं साध्य मूल्यों को जैविक एवं अतिजैविक मूल्यों के रूप में बॉटा जा सकता है। अर्बन के अनुसार, जैविक मूल्य वैयक्तिक होते हैं तथा जैविक आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं। अतिजैविक मूल्य,उच्चतर कोटि के हाते हैं तथा इन्हें सामाजिक एवं आध्यात्मिक दो कोटियों में रखा जा सकता है।

आदर्शवादी दार्शनिकों के अनुसार मूल्य शाश्वत एवं निरपेक्ष(Absolute)होते हैं तथा देश, काल परिस्थिति आदि के कारण इनके स्वरूप में परिवर्तन नहीं होता है। इन्होंने मूल्यों को 'ट्रुथ', 'गुडनेश' एवं 'ब्यूटी'(सत्यम्,शिवम,सुन्दरम) की संज्ञा प्रदान की है। ये तीनों मूल्य व्यक्ति की तीन आध्यात्मिक गतिविधियों–ज्ञानात्मक, कियात्मक एवं भावात्मक से सम्बन्धित हैं।

3.6.3 भारतोय एवं पाश्चात्य दृष्टिकोणों में समन्वय

मूल्यों के सम्बन्ध में भारतीय एवं पाश्चात्य दृष्टिकोण में जो मूल अन्तर है वह सुख की अवधारणा के कारण है। भारतीय दार्शनिकों द्वारा की गई प्रेयस और श्रेयस् की चर्चा पाश्चात्य जगत् में देखने को नहीं मिलती है। भारतीय सुख को सदैव अच्छा एवं प्राप्तव्य नहीं मानते हैं। इनके अनुसार मनुष्य बुध्दि एवं विवेक युक्त प्राणी है, अतः ज्ञान युक्त पक्ष से सम्बन्धित धर्म और मोक्ष, दो ही प्रमुख मूल्य हैं जिन्हें आध्यात्मिक मूल्य कहा गया है। ये निरपेक्ष मूल्य है तथा आदर्शवादियों के सत्य,शिव एवं सुन्दर इनमें समाहित हैं। इन्हें ही अर्बन की शब्दावली में अति जैविक मूल्यों की संज्ञा प्रदान की गई है।

जगत् के अन्य प्राणियों से समानता के कारण मनुष्य के जैविक मूल्य भी हैं जिन्हें भारतीय मनीषियों ने अर्थ एवं काम की संज्ञा प्रदान की है। काम का मूल्य सभी प्राणियों में होता है तथा कुछ में अर्थ का मूल्य भी पाया जाता है। अतः मानव के लिए इन मूल्यों को निम्नतर तथा गौण माना गया है। पाश्चात्य दर्शन में इन्हें साधन मूल्य कहा गया है। इस प्रकार पाश्चात्य अवधारणा के तीनों जैविक मूल्य अर्थ एवं काम के अन्तर्गत समाहित हो जाते हैं। अतः भारतीय एवं पाश्चात्य दृष्टिकोणों में इन समानताओं के आधार पर समन्वय स्थापित किया जा सकता है। अतः पाठ्यचर्या में भारतीय एवं पा" चात्य मूल्यों का समन्वय करते हुए पाठ्यवस्तु में इसका समावेश किया जाना चाहिए।

3.6.4 **भारतीय संविधान में निहित भूलभूत मूल्य**

किसी भी समाज द्वारा निर्धारित आदर्शों को ग्रहण करने के लिए उन आदर्शों एवं मूल्यों के अनुरूप नागरिकों के व्यवहार में अपेक्षित परिवर्तन करना होता हैं। व्यवहार में अपेक्षित परिवर्तन के लिए शिक्षा सर्वाधिक सशक्त माध्यम होती है। अतः समाज के आदर्शों एवं मूल्यों का शिक्षा पर प्रभाव पड़ता है।

आधुनिक भारतीय समाज ने लोकतांत्रिक समाजवादी शासन व्यवस्था को अपनाया है। अतः इसकी सफलता के लिये यह आवश्यक है कि देश के नागरिकों के व्यवहार में लोकतान्त्रिक मूल्यों का अधिक से अधिक समावेश हो तथा उनका व्यवहार लोकतन्त्र के अनुरूप परिवर्तित हो। लोकतन्त्र में शासन प्रणाली के साथ–साथ व्यक्तियों की जीवन–शैली में भी लोकतांत्रिक प्रणाली को अपनाने की आवश्यकता होती है। शिक्षा द्वारा ही इस महत्वपूर्ण कार्य को सम्पन्न किया जा सकता है। अतः शिक्षा के उद्देश्यों, पाठ्यचर्या, शिक्षण–विधियों एवं विद्यालयीन वातावरण में लोकतांत्रिक मूल्यों–स्वतन्त्रता, समानता, सामाजिक न्याय, धर्म

निरपेक्षता एवं बन्धुत्व को समुचित महत्व प्रदान करना होगा जिससे सभ्य और सुशिक्षित समाज प्रजातांत्रिक मूल्यों की रक्षा कर सके।

वर्तमान भारतीय समाज की लोकतांत्रिक – समाजवादी व्यवस्था के अनुसार शिक्षा के उद्देश्य निम्नवत होने चाहिए।

- लोकतांत्रिक मूल्यों का विकास करना।
- लोकतंत्र को जीवन–शैली के रूप में अपनाना।
- मानवीय संसाधनों का विकास करना।
- भौतिक संसाधनों का विकास करना।
- श्रम के प्रति निष्ठा उत्पन्न करना।
- सामाजिक न्याय की भावना का विकास करना।
- समान शैक्षिक अवसरों को उपलब्ध कराना।
- निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था करना।
- समान स्कूल प्रणाली को प्रोत्साहित करना।
- राष्ट्रीय चेतन को बढ़ावा देना।
- सर्वधर्म सदभाव की भावना का विकास करना।
- सामाजिक कुशलता में बृद्धि करना।
- अन्तराष्ट्रीय सदभाव का विकास करना।
- मानव के व्यक्तित्व एवं गुणों का विकास करना।
- अच्छी आदतों का निर्माण करना।
- सामाजिक गुणों – प्रेम, सहानुभूति, सहनशीलता, कर्तव्य परायणता, परस्परिक सद्भाव आदिका विकास करना।
- आत्मानुशासन की भावना का विकास करना।
- जन कल्याण की भावना का विकास करना।
- जीविकोपर्जन की क्षमता प्रदान करना।

लोकतंत्रीय आदर्शों एवं मूल्यों को प्राप्त करने के लिए पाठ्यचर्या में उन विषयों को मुख्य स्थान दिया जाता है जिनके अध्ययन से बालकों में उत्तम मानोंवृत्तियों, अच्छे सामाजिक एवं नागरिक गुणों, आत्म अनुशासन एवं आत्म निर्भरता का विकास हो सके। इस प्रकार उपरोक्त शिक्षा के उद्देश्यों को ध्यान रखते हुए पाठ्यचर्या की संरचना की जानी चाहिए जिससे बालको में प्रारम्भिक स्तर से प्राजातांत्रिक गुणों का सुचित एवं संनतुलित विकास हो सके तथा प्राजातांत्रिक मूल्यों की रक्षा हो सके।

- **मूल्यों के प्रति मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण(Psychological Views Regarding to Values)**

आधुनिक मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण के अनुसार लक्ष्य की प्राप्ति ही मूल्य है। मासलो(Maslow)मूल्य को एक मनोवैज्ञानिक आवश्यकता मानता है। मारगेनो के अनुसार मूल्य, मानवीय आवश्यकताओं के सन्तोष का मापन है। इसने मूल्यों को दो वर्गों में रखा है– तथ्यात्मक(Factual) एवं आदर्शात्मक(Normative)। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि मनोवैज्ञानिक अवधारणा,मनुष्य की आवश्यकताओं एवं उनकी पूर्ति तक ही अपने को सीमित रखती हुई लक्ष्य की पूर्ति को 'मूल्य' मानती है। मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण के अनुसार लक्ष्य अलग–अलग हो सकते हैं।

- **मूल्य सम्बन्धी समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण(Sociological Views of Values)**

'मूल्य' के प्रति समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण और मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण में बहुत अधिक समानता है। पारसन्स के अनुसार,'मूल्य' किसी भी समाज व्यवस्था के विभिन्न उपक्रमों में से किसी एक के चयन का मानदण्ड है। काने के अनुसार 'मूल्य' वे आदर्श, विश्वास एवं मानक होते हैं जिन्हें समाज या समाज का

अधिसंख्य भाग ग्रहण किये होता है। लूमिस एवं लुमिस के अनुसार,'मूल्य' मानव व्यवहार के वास्तविक निर्धारक होते हैं जो विभिन्न वैकल्पिक लक्ष्यों में से लक्ष्यों को चुनने में मानदण्ड के रूप में कार्य करते हैं।
इस प्रकार उर्पयुक्त समाजशास्त्रियों के कथनों के आधार पर 'मूल्य' की परिभाषा इस प्रकार दी जा सकती है–

"मूल्य वे मानदण्ड हैं जो किसी समाज में उपलब्ध वैकल्पिक साधन एवं लक्ष्यों में से उपयुक्त साधन एवं लक्ष्य को चुनने में सहायता करते हैं तथा मानव व्यवहार का निर्धारण करते हैं।"

इस प्रकार मनोवैज्ञानिक एवं समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण के अनुसार पाठ्यचर्या में मूल्यों को समाहित किया जाता है।

3.7 पाठ्यचर्या के निर्धारक

पाठ्यचर्या शिक्षा का सर्वाधिक महत्वपूर्ण पक्ष है । मनोविज्ञान के विकास में पाठ्यचर्या की रचना को कई प्रकार से प्रभावित किया है। अतः उन तत्वों के बारे जानना तथा उनका अध्ययन करना पाठ्यचर्या के आयोजकों के लिए अतिआवश्यक है जो पाठ्यचर्या को प्रभावित करते है। पाठ्यचर्या के इन निर्धारकों को जानने एवं पाठ्यचर्या के संबंध को स्पष्ट करने हेतु जॉनसन ने कुछ प्रश्नों के उत्तर प्राप्त करना उपयोगी माना है। ये प्रश्न निम्नवत हैं–

- क्या विद्यार्थी का शारीरिक विकास पाठ्यचर्या को प्रभावित करता है ?
- क्या विद्यार्थी का मानसिक विकास पाठ्यचर्या को प्रभावित करता है ?
- क्या विद्यार्थी के शारीरिक, पारिवारिक विकास संबंधी या किसी अन्य प्रकार की व्यक्तिगत समस्याएँ एवं आवश्यकताएँ पाठ्यचर्या को प्रभावित करती है ?
- क्या विद्यार्थी की अभिरूचियाँ पाठ्यचर्या को प्रभावित करती है ?
- क्या पाठ्यचर्या के नियोजन में विद्यार्थी के लिए पुरस्कार एवं दण्ड का कोई स्थान है तथा यदि है तो इसके सन्तुलन की क्या स्थति होनी चाहिए ?

इन उपरोक्त प्रश्नों के उत्तर पाठ्यचर्या के मनोवैज्ञानिक निर्धारकों की विवेचना से स्पष्ट होगें। यद्यपि पाठ्यचर्या की पृष्ठभूमि में मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण सर्वत्र व्याप्त रहता है फिर भी इसके मुख्य निर्धारक निम्नालिखित मनोवैज्ञानिक तत्वों को माना जा सकता है–

1. परिपक्वता एवं विकास
2. व्यक्तिगत भिन्नता
3. अभिरूचि
4. अभिप्रेरणा
5. अधिगम प्रक्रिया एवं अधिगम का स्थानान्तरण
6. मानव प्रकृति एवं उसमें परिवर्तन

3.8–पाठ्यचर्या मूल्यांकन

पाठ्यक्रम संरचना का अन्तिम सोपान सम्पूर्ण प्रकिया का उद्देश्यों की प्राप्ति की दृष्टिसे मूल्यांकन करना है। उद्देश्यों के निर्धारण एवं स्पष्ट कथन,अधिगम–अनुभवों एवं अन्तर्वस्तु के चयन तथा अन्तर्वस्तु के संग्रथन एवं संगठन के पश्चात पाठ्यक्रम को कार्यरूप दे दिया जाता है। पाठ्यक्रम को कार्यरूप देने के बाद यह भी जानना आवश्यक होता है कि उस पाठ्यक्रम से विद्यार्थियों में कितना अपेक्षित व्यवहारगत परिवर्तन हुआ है और कितना नहीं हो सका है। इस कार्य को मूल्यांकन की संज्ञा दी जाती है।

पाठ्यक्रम के मूल्यांकन का तात्पर्य शैक्षिक प्रयासों के परिणामस्वरूप उत्पन्न व्यवहारगत परिवर्तनों की प्रकृति,दिशा तथा सीमा के प्रमाण का प्राप्त करना तथा उनको पाठ्यक्रम–प्रक्रिया के पक्षों में सुधार लाने के लिए मार्गदर्शक के रूप में प्रयुक्त करना है।

विद्यार्थियों के व्यक्तिगत अथवा वर्गगत व्यवहार परिवर्तन के साथ–साथ विद्यालय के उद्देश्यों तथा उन्हे प्राप्त करने के लिए प्रयुक्त अधिगम–अनुभवों,अर्न्तवस्तु संगठन तथा शिक्षण विधियों के सम्बन्ध में निर्णय लेना भी मूल्यांकन के अंतर्गत आता है।

मूल्यांकन के प्रमुख क्षेत्र निम्नवत हैः–

- छात्रों मे व्यवहारगत परिवर्तन तथा इन व्यवहारों को प्रभावित करने के लिये उत्तरदायी कारक।
- मूल्यांकन कार्यक्रम का छात्र–अभिप्रेरण तथा अधिगम पर प्रभाव।
- पाठ्यक्रम प्रक्रिया के सभी पक्षों का मूल्यांकन।

3.7.1 मूल्यांकन की विशेषताएं

मूल्यांकन की प्रमुख विशेषताएं निम्नवत हैं–

- क्रमबध्दता (Orderliness)
- वस्तुनिष्ठता (Objectivesvity)
- विश्वसनीयता (Reliability)
- वैधता (Validity)
- व्यावहारिकता(Usability)
- व्यापकर्ता(Brodeness)
- शिक्षार्थी की सहभागिता(Participation)

3.6.2 पाठ्यचर्या मूल्यांकन के लाभ

पाठ्यक्रम के मूल्यांकन के प्रमख रूप से दो लाभ हैं–

1.इसके द्वारा प्रमुखरूप से विद्यार्थियों से अपेक्षित तथा उनमें हो चुके व्यवहारगत परिवर्तनों की तुलना हो जाती है। इसके अभाव में सही नहीं कहा जा सकता है कि उद्देश्यों की पूर्ति हुई है अथवा नहीं तथा यदि हुई है तो किस अंश अथवा सीमा तक। इससे यह भी पता चल जाता है कि ज्ञान, अववोध,कौशल,मूल्य,अमिवृत्ति आदि सम्बन्धी उद्देश्य कहॉ तक पूर्ण हो सके हैं।

2.पाठ्यक्रम की प्रकिया सतत् चलती रहती है। किसी वृत्त पर अंकित बिन्दुओं के समान उसके क्रमिक सोपान एक–दूसरे के बाद आते चले जाते हैं। इस दृष्टि से मूल्यांकन भावी कार्य के लिये उपयोगी निर्देश देता है। मूल्यांकन के आधार पर ही यह निर्णय किया जा सकता है कि जो कुछ प्राप्त हो चुका है उसे कैसे आगे बढ़ाया जाये तथा जिसकी प्राप्ति नहीं हो सकी है उसके लिये किस तरह के परिवर्तन किये जायें। इस प्रकार कह सकते हैं कि पाठ्यचर्या मूल्यांकन का तात्पर्य शैक्षिक प्रयासों के परिणामस्वरूप उत्पन्न व्यवहारगत परिवर्तनों की प्रकृति, दिशा तथा सीमा के प्रमाण प्राप्त करना तथा इनको पाठ्यचर्या प्रक्रिया के पक्षों में सुधार लाने के मार्गदर्शक के रूप में प्रस्तुत करना है।

3.8.2–पाठ्यचर्या मूल्यांकन की प्रकिया

पाठ्यक्रम विकास के विभिन्न सोपानों के अध्ययन से यह स्पष्ट है कि पाठ्यक्रम विकास की प्रकिया का स्वरूप वृत्ताकार है। मूल्यांकन वह पद है जिस पर एक चक्र पूर्ण होता है और दूसरा प्रारंभ हो जाता है। मूल्यांकन से जहां एक ओर निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति के बारे में जानकारी प्राप्त हाती हैं वहीं दूसरी ओर उसमे संशोधन एवं परिवर्तन की आवश्यकता का भी अनुभव होता है। इस प्रकार मूल्यांकन के भावी उद्देश्यों के लिये दिशा–निर्देश प्राप्त होता है। अतः शैक्षिक उद्देश्यों का निर्धारण पाठ्यक्रम–निर्माता एवं मूल्यांकन कर्ता दोनों का सामूहिक कार्य होना चाहिये। उद्देश्यों के निर्धारण में मूल्यांकन कार्य करने वालो की सहभागिता इसलिये भी आवश्यक है जिससे उसे इस बात का सम्यक ज्ञान हो कि उसे किन चीजों का मूल्यांकन करना है

मूल्यांकन कार्य केवल कौशल शैक्षिक उद्देश्यों के निर्धारण तक ही सीमित नहीं है बल्कि यह अधिगम–अनुभवों एवं अन्तर्वस्तु के चयन से भी सम्बन्धित है। अधिगम–अनुभवों तथा अन्तर्वस्तु के चयन के लिये यह आवश्यक है कि पाठ्यक्रम–निर्माता को शिक्षार्थियों की क्षमताओं,अभिरूचियों,व्यक्तिगत भेदों,आवश्यकताओं आदि की जानकारी हो। मूल्यांकन से इन सबका ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है।

अधिगम अनुभवों एवं अन्तर्वस्तु के चयन में मूल्यांकन दो प्रकार से योग प्रदान करता है–

1–यह चयन मे सहायक आवश्यक प्रदत्तों को उपलब्ध कराता है तथा

2–यह व्यक्ति अथवा वर्ग की अधिगम–तत्परता का बोध कराता है।

प्रायः कोई भी शैक्षिक अनुभव ऐसा नहीं है जिसके लिये कोई एक संगठनात्मक सिध्दांत पूर्णतया उपयुक्त होता हो तथा विभिन्न संगठनात्मक प्रतिमानों में केवल चयन की नहीं,बल्कि संग्रथन की भी आवश्यकता होती है। अतः इनकी उपयुक्तता ज्ञात करने के लिए मूल्यांकन कार्य से सहायता मिल पाती है। इस प्रकार मूल्यांकन प्रकिया पाठ्यक्रम–विकास के सभी पक्षों से सम्बन्धित रहती है।

पाठ्यक्रम की मूल्यांकन प्रक्रिया इसके विकास की सभी चरणों में सतत् रूप से चलती रहती है। इससे भावी कदम के लिये दिशा–निर्देश प्राप्त होता रहता है। पाठ्यक्रम–अनुंसधान के क्षेत्र में भी मूल्यांकन का बहुत महत्व है। विभिन्न शोधकत्ताओं द्वारा एक ही उद्देश्य या समस्या के लिये अलग–अलग उपागम अपनाय जाते हैं। किन्ही दो अथवा कई उपगमों के प्रभाव की तुलनात्मक स्थिति का ज्ञान परि कल्पनाओं का प्ररीक्षण विभिन्न स्तरों पर विषयों के निर्धारण का प्रभाव आदि मूल्यांकन द्वारा ही सम्भव हो सकता है। अतः क्रान बैक का यह कथन पूर्णतया सही है कि मूल्यांकन पाठ्यक्रम निर्माण की परिशिष्ट न होकर अनिवार्य अंग है।

पाठ्यक्रम चक्र की सम्प्रत्यात्मक रूपरेखा निम्नवत है–

पाठ्यक्रमचक्र की सम्प्रत्यात्मक रूपरेखा

पाठ्यचर्या के सन्दर्भ में NCERT ने मूल्यांकन को एक ऐसी सतत् व व्यवस्थित प्रकिया बताया है जो देखती है कि–

1-निर्धारित शैक्षिक उद्देश्यों की प्राप्ति किस सीमा तक होती है।

2–.वक्षा में दिये गये अधिगम अनुभव कितने प्रभावशाली हैं।

3–शिक्षा के उद्देश्य कितने अच्छे ढ़ंग से प्राप्त हो रहे हैं।

स्पष्ट है कि शिक्षण उद्देश्यों की वांछनीयता को मूल्यांकन प्रक्रिया के अंतर्गत देखा जाता है। मूल्यांकन प्रक्रिया के तीन प्रमुख तत्व –शिक्षण, अधिगम एवं व्यवहार परिवर्तन परस्पर एक दूसरे से संबंधित एवं निर्भर रहते हैं।

पाठ्यक्रम मूल्यांकन प्रकिया निम्नलिखित दो स्तरों पर की जाती है–

1.**सूक्ष्म स्तर पर मूल्यांकन प्रकिया**(Evaluation process at micro level)

इसके अन्तर्गत पाठ्यचर्या के प्रत्येक विषय का मूल्यांकन दो प्रकार से किया जा सकता है

1.निर्णय एवं

2.प्रेक्षण द्वारा

निर्णय द्वारा मूल्यांकन तीन पदों में होता है– प्रथम शिक्षक द्वारा,दूसरा शिक्षार्थी द्वारा तथा तीसरा विषय विशेषज्ञ द्वारा। इन तीनों पदों के सारांश एवं सुझाव के आधार पर पाठ्यचर्या का पुर्न मूल्यांकन किया जाता है।

प्रेक्षण द्वारा पाठ्यचर्या मूल्यांकन के लिये एक समिति का गठन किया जाता है जो पाठ्यचर्या की जांच–परख कर सुझाव प्रस्तुत करती है।

इस प्रकार से सूक्ष्म स्तर पर पाठ्यक्रम मूल्यांकन प्रक्रिया निम्नलिखित आरेख के अनुसार चलती है–

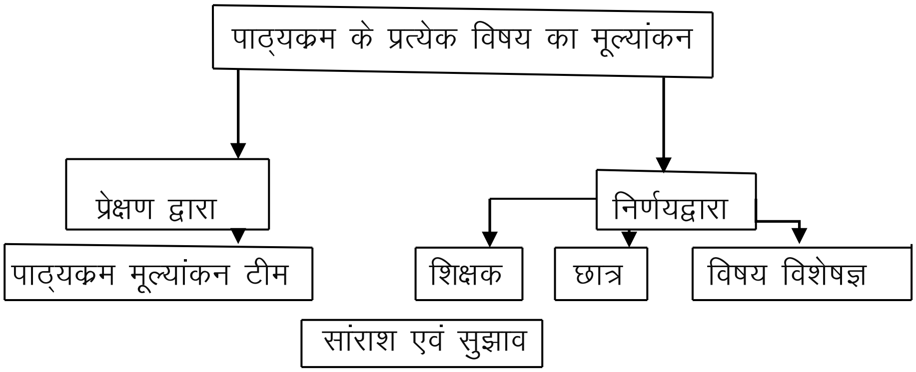

सूक्ष्म स्तर पर पाठ्यकम मूल्यांकन प्रकिया

2. **बृहदस्तर पर मूल्यांकन प्रकिया** (Evaluation process a macro level)

इसके द्वारा सम्पूर्ण पाठ्यचर्या की प्रभावितता का मूल्यांकन निम्नलिखित पदों में किया जाता है–

1. शिक्षार्थी का उद्देश्यपूर्ण अधिगम – छात्र कोर्स पूरा करके कही पर नौकरी कर रहे हैं।
2. मालिक, जहॉ शिक्षार्थी कार्यरत है अर्थात कर्मयुक्त व्यक्तियों (शिक्षार्थी) से मालिक कितने सन्तुष्ट हैं।
3. विषय विशेषज्ञ – इनके द्वारा यहॉ पता लगया जाता है कि पाठ्यचर्या की विषय वस्तु केसी है।
4. प्रधानाचार्य। शिक्षक – इनके द्वारा यहा पता लगया जाता है कि स्कूल में पाठ्यवस्तु को कितना महत्व दिया जाता है।
5. पाठ्यचर्या विशेषज्ञ – इनके द्वारा यहा पता लगया जाता है कि पाठ्यचर्या की विषय वस्तु उचित है या नहीं।
6. माध्यमिक। उच्चतर शिक्षा बोर्ड – बोर्ड द्वारा इसका निर्णया होता है कि यहॉ पाठ्यचर्या लागू कि जाए या नहीं।

उपरोक्त पदों के द्वारा जो सारांश एवं सुझाव प्राप्त होते हैं उनके आधार पर प्रतिवेदन तैयार कर पाठ्यचर्या निर्माणकत्ताओं की समिति द्वारा पाठ्यचर्या का परिवर्तन एवं परिवर्धन किया जाता है। इस प्रकार से यह प्रक्रिया वृहत्तर स्तर पर मूल्यांकन प्रक्रिया कहलाती है।

वृहत्तर स्तर पर पाठ्यर्चा मूल्यांकन (Macro Level)

सम्पूर्ण पाठ्यक्रम की प्रभावित का मूल्यांकन

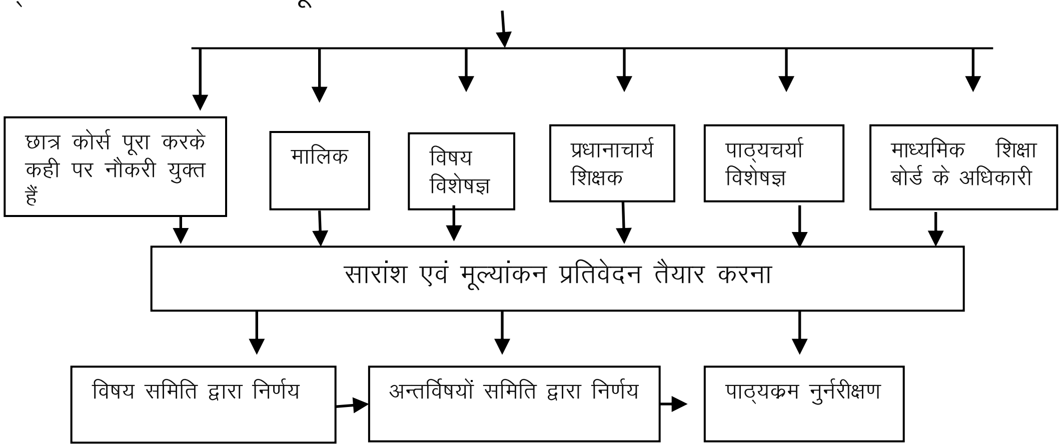

3.8.4 पाठ्यचर्या मूल्यांकन प्रतिमान

मूल्यांकन, पाठ्यचर्या विकास का एक आवश्यक घटक है। मूल्यांकन के द्वारा मूल्यांकनकर्ता के पास आकड़े एकत्रित होते है, इन आकड़ों की सहायता से किसी पाठ्यचर्या के बारे में निर्णय लिया जाता है कि उसे स्वीकार किया जाए, परिवर्तित किया जाए अथवा समाप्त किया जाए। विद्वानों ने पाठ्यचर्या मूल्यांकन के कई प्रतिमान प्रस्तुत किये है,जिनमें से टायलर प्रतिमान प्रमुख है–

टायलर प्रतिमान को 'आठ वर्षीय अध्ययन' प्रतिमान भी कहा जाता हैं। टायलर के निर्देशन में यह अध्ययन 1933 से 1942 तक किया गया। यह अध्ययन पाठ्यचर्या विकास की सम्पूर्ण प्रक्रिया से सम्बन्धित था, जिसमें मूल्यांकन एक अनिवार्य अंग था। अध्ययन के विभिन्न परीक्षणों, मापनियों,अनुसूचियों,जॉच–पत्रों,प्रश्नावलियों,विद्यार्थी अभिलेखों एवं अन्य माध्यमों का उपयोग प्रदत्त एकत्रित करने के लिए किया गया।

टायलर ने बताया कि जो व्यक्ति पाठ्यचर्या की खोज में शामिल हों, उन्हें(1) विद्यालय के उद्देश्य,(2)उद्देश्यों से सम्बन्धित शैक्षिक अनुभवों,(3)इन उद्देश्यों का संगठन एवं(4)उद्देश्यों के मूल्यांकन को अवश्य परिभाषित करना चाहिए। उसने बताया कि पाठ्यचर्या नियोजकों को इन सामान्य उद्देश्यों की पहचान विषयवस्तु, शिक्षार्थियों एवं समाज से प्राप्त प्रदत्तों से की जाती हैं। कई सामान्य उद्देश्यों की पहचानकर पाठ्यचर्या नियोजकों द्वारा उन्हें दो प्रकार की जॉचों, यथा–विद्यालय के अवलोकन एवं अधिगम के मनोविज्ञान से जॉचकर परिष्कृत किया जाता था। उसने अनुदेशन उद्देश्य शब्द का उपयोग किया था।

टायलर के अनुसार, "अधिगम अनुभवों के अन्तर्गत पूर्व अनुभवों एवं शिक्षार्थी प्रत्यक्षणों दोनों को शामिल किया जाना चाहिए। शिक्षक जो अधिगम एवं मानव विकास के बारे में जानते हैं, उनके सन्दर्भ में भी अधिगम अनुभवों का चयन किया जाना चाहिए।"

टायलर के अनुसार, पाठ्यचर्या संगठन के तत्व जैसे–विचारों, संकल्पनाओं मूल्यों एवं कौशलों इत्यादि को धागों के रूप में बुना जाना चाहिए ताकि पाठ्यचर्या रूपी वस्त्र का निर्माण हो सके। उसने पाठ्यचर्या विकास में मूल्यांकन को महत्वपूर्ण माना। मूल्यांकन द्वारा इस बात का पता चलता है कि अधिगम अनुभवों से वांछित परिणाम प्राप्त हुए अथवा नहीं। मूल्यांकन से यह मालूम होता है कि कार्यक्रम प्रभावी था अथवा अप्रभावी । यह आवश्यक हैं कि मूल्यांकन सभी उद्देश्यों से सम्बन्धित हो। टायलर ने मूल्यांकनकर्ताओं के लिए निम्नलिखित अनुशंसाए अध्ययन के आधार पर की थी–

- विस्तृत लक्ष्य अथवा उद्देश्य सीापित किया जाय।
- उद्देश्यों को वर्गीकृत किया जाय।
- उन स्थितियों का मूल्यांकन किया जाय, जिनमें उद्देश्यों की उपलब्धि दिखाई जा सके।
- मापन तकनीकों को विकसित किया जाय अथवा उनका चुनाव किया जाय।

- शिक्षार्थि के निष्पादन के आंकड़े इक्ट्ठा किया जाय और
- व्यवहारिक रूप से कहे गए उद्देश्यों से आंकड़े की तुलना की जाय।

टायलर प्रतिमान का रेखा चित्रण निम्नवत है–

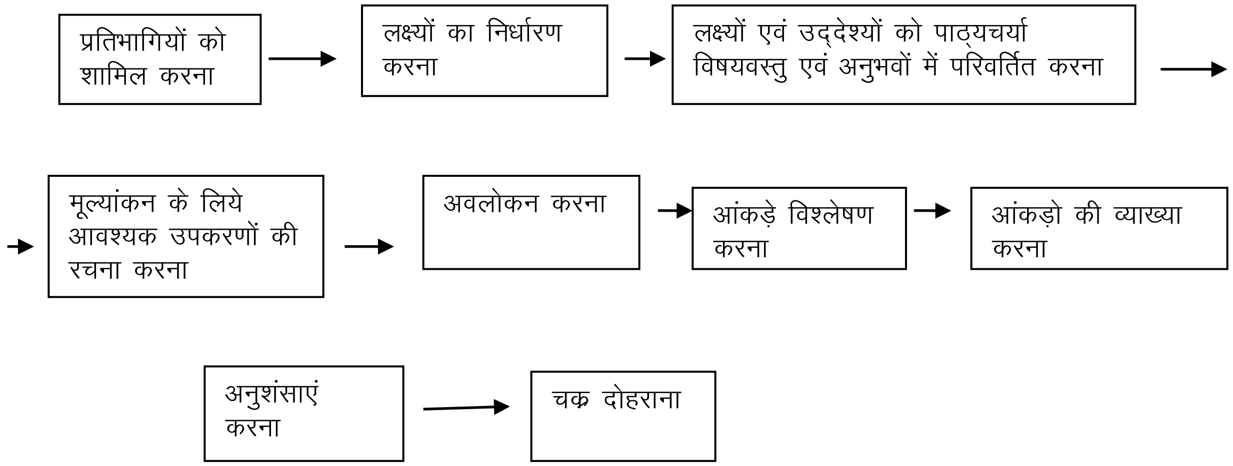

आरेखः टायलर मूल्यांकन प्रतिमान

3.9 सारांश

प्रस्तुत इकाई में पाठ्यचर्या में कार्य के स्थान का उल्लेख किया गया है। इसके अंतर्गत कार्यो का वर्गीकरण एवं विकासात्मक कार्य का वर्णन समाहित है। व्यापक दृष्टि कोण के आधार पर कार्य को तीन प्रमुख वर्गों शैक्षिक क्रियाएंः पाठ्यसहगामी और रूचिकार में वर्गीकृत किया गया है। विकासात्मक कार्यों में प्रारम्भिक बाल्यावस्था, मध्य बाल्यावस्था एव ंकिशोरावस्था का वर्णन है। इसी इकाई में ज्ञान के एकीकरण के साथ ही कौशलों के विकास पर प्रकाश डाला गया है। पाठ्यचर्या के क्रियान्वयन का उल्लेख किया गया है। पाठ्यचर्या का निहातार्थ (तात्पर्य) समझाते हुए पाठ्यचर्या के क्रियान्वयन का उल्लेख किया गया है। पाठ्यचर्या में मूल्यों के अंतर्गत भौतिक एवं अभौतिक संस्कृति के आधार पर मूल्य की अवधारणा प्रस्तुत की गई है। मूल्य संबंधी भारतीय एवं पाश्चात्य अवधारण का उल्लेख करते हुए दोनों दृष्टिकोणों में समन्वय की व्याख्या की गई है। मूल्यों के प्रति मनोवैज्ञानिक एवं समाजशास्त्रीय दृष्टिकोणों का उल्लेख करते हुए भारतीय संविधान में निहित मूलभूत मूल्यों का वर्णन किया गया है। पाठ्यचर्या के निर्धारकों का उल्लेख करते हुए पाठ्यचर्या मूल्यांकन के अंतर्गत मूल्यांकन के प्रमुख क्षेत्र, मूल्यांकन की विशेषताएं पाठ्यचर्या मूल्यांकन के लाभ, पाठ्यचर्या मूल्यांकन की प्रक्रिया एवं पाठ्यचर्या मूल्यांकन के टायलर प्रतिमान की समझाया गया है।

3.12 अभ्यास कार्य

- पाठ्यचर्या में कार्य की स्थान की तर्क संगत विवेचना कीजिए।
- पाठ्यचर्या में पाठ्यसहगामी क्रियाओं के महत्व की विवेचना करते हुए विभिन्न प्रकार की पाठ्यसहगामी क्रियाओं को समझाइये।
- मानव जीवन में रूचिकार्य के महत्व की विवेचना कीजिए।
- विकासात्मक कार्यों से क्या तात्पर्य हैं ? हेविग हर्स्ट के अनुसार विकासात्मक कार्यों का वर्णन कीजिए।
- कौशलों के विकास हेतु माध्यमिक स्तर पर पाठ्यचर्या में किन–किन विषयों की व्यवस्था होनी चाहिए ? तर्क सहित व्याख्या कीजिए।
- ''ज्ञान को समग्र रूप में प्रस्तुत करना ही एकीकरण है।'' कथन की व्याख्या कजिये।
- ''पाठ्यचर्या क्रियान्वयन शिक्षण व्यवस्था का महत्वपूर्ण घटक हैं।'' समझाइये।
- 'मूल्य' की अपने शब्दों में व्याख्या कीजिए।
- मूल्य संबंधी भारतीय अवधारणा समझाइये।

- पाठ्यचर्या का निहितार्थ (तात्पर्य) अपने शब्दों में समझाइये।
- पाठ्यचर्या मूल्यांकन की प्रक्रिया समझाते हुए टायलर प्रतिमान की व्याख्या कीजिए।

3.13 कुछ उपयोगी पुस्तकें

- पाठक, आर.पी. एवं भारद्वाज पाण्डेय, अमिता (2012). **पाठ्यचर्या निर्देशन एवं तुलनात्मक शिक्षा का आधार** , नई दिल्ली : कनिष्क पब्लिशर्स, डिस्ट्रीब्यूटर्स।
- पाल, हंसराज (1998). **पाठ्यचर्या आधार एवं सिद्धांत,** इन्दौरः स्कालर्स पब्लिशिंग हाउस, 241–खजूरी बाजार।
- भास्कर, पंकज एवं सिंह, सरिता (2016). **पाठ्यचर्या विकास एवं विद्यालय,** आगराः राखी प्रकाशन प्रा.लि.।
- यादव, सियाराम (2014). **पाठ्यक्रम विकास,** आगरा–2 : श्री विनोद पुस्तक मन्दिर।
- यादव, संगीता एवं सिंधु पूनम (2014). **पाठ्यक्रम विकास और अनुदेशन**, नई दिल्लीः अर्जुन पब्लिकशिंग हाउस।